

रोहित धनकर ने यह बहस अपने ब्लॉग पर शुरू की थी। इस पर अनेक लोगों ने अपनी प्रतिक्रियाएं दर्ज की हैं। इस बहस के अन्त में कुछ सवाल दिए गए हैं, आप भी अपनी प्रतिक्रिया/टिप्पणी निम्न ब्लॉग पर भेज सकते हैं:  
<http://rohitdhankar.com>

## आरंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण क्यों?

रोहित धनकर

एक देश के तौर पर भारत आरंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए प्रतिबद्ध है, चाहे हकीकत हमें इसके प्रति थोड़ा संदेह करने को प्रेरित करे। तब भी कम से कम कागजों में यह बात मौजूद है। इस प्रतिबद्धता को माध्यमिक स्तर तक बढ़ाने का एक दबाव है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का सार्वजनीकरण सुनिश्चित करने संबंधी एक कानून 'बच्चों के लिए निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009' है। इसे संक्षेप में आरटीई कहते हैं। इस पर राष्ट्रीय सहमति है और यह संसद द्वारा पारित है।

हम इस राष्ट्रीय सहमति पर संतोष प्रकट कर सकते हैं और सोच सकते हैं कि मामला सुलझाया जा चुका है। लेकिन आरंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण को पा लेने की राह में अनेक बहसों मौजूद हैं, जैसे- क्या निजी स्कूलों को अपने यहां 25 प्रतिशत बच्चों को सरकार द्वारा तय की गई फीस पर प्रवेश देने के लिए बाध्य किया जाना चाहिए? गुणवत्ता कैसे तय हो; क्या परीक्षा न लेना व फेल न करना अच्छी नीति है? सतत व व्यापक मूल्यांकन (सीसीई) क्या होता है, आदि-आदि। हम इनके बारे में तथा इसी तरह के अन्य सवालों के बारे में आमतौर पर स्वीकृत/मान्य जवाब गढ़ने की कोशिश करते हैं। इस संदर्भ में मैं कुछ पुराने व सीधे सवाल फिर से करना चाहता हूं। उनमें सबसे पहला है : हम आरंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण क्यों चाहते हैं?

यह पर्याप्त बहस वाला मुद्दा रहा है और अंततः सुलझ चुका है। इसका मतलब है कि हमारे पास इसे लेकर आमतौर पर स्वीकृति योग्य व स्वीकृत जवाब हैं। यह बात सही हो सकती है। नीति निर्माता व प्रशासकों के पास इसका जवाब हो सकता है, शिक्षाविदों व विश्वविद्यालय के प्रोफेसर्स के पास भी इसके जवाब हो सकते हैं। मगर यह कहना अचरज भरा होगा कि शिक्षा में काम करने वाले हर व्यक्ति के पास इसके जवाब मौजूद हैं। स्कूल के विकास के लिए समुदाय को प्रेरित करने वाले कार्यकर्ता के पास क्या इस सवाल का उचित जवाब है? क्या शिक्षकों के पास ऐसा कोई जवाब है? क्या अधिकतर शिक्षक प्रशिक्षकों के पास इसका

### लेखक परिचय

जाने-माने शिक्षाविद् एवं दिगन्तर के मानद सचिव। आजकल अजीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी, बेंगलूर में शिक्षा दर्शन के प्रोफेसर हैं।

जवाब है? और अगर वे सब जवाब देते हैं तो क्या उनके जवाब परस्पर संगत हैं; मुझे इस पर संदेह है।

प्रायः हम मूल सवालों के बारे में जिस तरह के जवाब देते हैं, वे आगे उठाए जाने वाले सवालों व उनके स्वीकृति योग्य जवाबों पर बहुत असर डालते हैं। “आरंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण क्यों?” इस सवाल के बारे में हम जिस तरह के जवाब गढ़ते हैं और स्वीकृत करते हैं, वे आगे के हमारे कुछ सवालों को प्रभावित करेंगे कि क्या 25 प्रतिशत कोटा अनिवार्य होना चाहिए? क्या फेल नहीं करने की नीति बेहतर है? हम शिक्षा की गुणवत्ता को कैसे परिभाषित करते हैं; इत्यादि। अगर ये सब स्वीकार्य/मान्य हैं तो यह सवाल कि “हम आरंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण क्यों चाहते हैं?” बहुत ही वाजिब लगने लगता है।

इसलिए इस पोस्ट को जो लोग पढ़ते रहते हैं मैं उनसे यह दरखास्त करता हूँ कि वे इस सवाल का जवाब टिप्पणी के तौर पर अथवा वे जैसे चाहें जरूर दें।

“हम आरंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण क्यों चाहते हैं?”

### जवाब 1 : बिन्दु थिरुमलाई

जब मैं यह सवाल करती हूँ कि “मुझे ‘कोई चीज’ क्यों चाहिए?” तो जवाब प्रायः उस ‘चीज’ के उद्देश्य में छिपा होता है। एक समाज के तौर यह सवाल भी इसी तरह का है कि हम अपने बच्चों को शिक्षित क्यों करना चाहते हैं? मेरे खयाल से इसका जवाब शिक्षा के उद्देश्यों की समझ में छुपा हुआ है। इसलिए सबसे पहले हमें इस सवाल का जवाब देना होगा कि शिक्षा के उद्देश्य क्या हैं? राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एनसीएफ 2005) ने शिक्षा के उद्देश्यों को परिभाषित किया है। इन उद्देश्यों को संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है:

लोकतांत्रिक पहचान को पोषित करना, लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में सक्रिय भागीदारी करने योग्य बनना, समाज में योगदान देना, लोकतंत्र और समता, न्याय एवं स्वतंत्रता के मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध होना, स्वतंत्र रूप से विचार कर पाना और अपने भीतर आत्मसात लोकतांत्रिक मूल्यों के आधार पर व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से क्रियाकलाप कर पाना। बच्चों को अपने परिवेश के प्रति सजग व संवेदनशील बनाने की महत्ता, इसे कैसे बचाएं व इसे नुकसान पहुंचाने वाले कारणों की समझ।

ऐसा वातावरण रचना जहां बच्चे भिन्न संस्कृतियों को अपनाते सीखें यानी दूसरों की भावनाओं के प्रति संवेदनशील होना और सम्मान रखना। हमारे जैसे बहु-सांस्कृतिक समाज में शांतिपूर्वक सह-अस्तित्व के साथ रहना, सभी संस्कृतियों को बराबरी से फलने-फूलने देना। बच्चे को समाज में हो रहे उत्पादन कार्य में भागीदारी करने योग्य बनाना ताकि वह इसकी आर्थिक उन्नति में भागीदारी कर सके।

हम इन व्यापक उद्देश्यों से सहमत हैं क्योंकि ये पूरे समाज के विकास से जुड़े हैं। अब एक अगला सवाल पूछने की जरूरत पड़ती है कि क्या ये सभी उद्देश्य केवल स्कूली शिक्षा के जरिए ही पाए जा सकते हैं? संभवतः नहीं। दरअसल इनमें से कोई भी या सभी उद्देश्य समुदायों और परिवारों में विभिन्न साधनों के जरिए हासिल किए जाते हैं और किए जा सकते हैं।

इसलिए यह बात हमें फिर से उसी सवाल की ओर ले आती है कि फिर कानून द्वारा प्रदत्त अधिकार या सभी के लिए शिक्षा को अनिवार्य बनाने की जरूरत क्यों है? ऐसा इसलिए कि हमारे समाज में असमानता बहुत ज्यादा है। एक तरफ तो बहुत से समुदाय हाशिए पर हैं और उन्हें समर्थ बनाने वाले संसाधन उनकी पहुंच से बाहर हैं। दूसरी ओर जिन कुछ लोगों के पास संसाधन व सत्ता है, वे जरूरी नहीं कि सभी के लिए समान अवसर में यकीन करते हों। इसलिए यह माना जाता है कि शिक्षा को अनिवार्य बनाना और हर बच्चे के लिए समान ‘गुणवत्तापूर्ण’ शिक्षा उपलब्ध करवाने जैसे कदम हर बच्चे की खातिर शिक्षा के उद्देश्यों को पूरा करने में सक्षम होंगे।

## जवाब 2 : अरुणा

इस सवाल का जवाब पाने के लिए हमें कुछ और सवालों से होकर गुजरना पड़ेगा- शिक्षा क्या है? शिक्षा से किसी समाज का आशय क्या है? व्यक्तियों और समाज के लिए इसकी क्या जरूरत है? हमारे जैसे सामाजिक व राजनीतिक विविधता वाले समाज में औपचारिक शिक्षा कैसे दी जाती है? अकादमिक क्षेत्र में तो इन सवालों पर काफी बहस होती है, पर रोजमर्रा के संदर्भ में प्रायः इन सवालों और उनके जवाबों को अतिसरलीकृत कर दिया जाता है।

अगर हम 'आरंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण' का विश्लेषण करें तो पाते हैं कि शिक्षा लोकहित से जुड़ी है, जिसे भौगोलिक रूप से दूरवर्ती क्षेत्रों तक पहुंचाया जाना चाहिए। सरकार सार्वजनीकरण के लक्ष्य को प्राथमिक स्कूलों की संख्या बढ़ाकर, स्कूलों में बच्चों के नामांकन को आसान बनाकर और भोजन तथा इसी तरह के दूसरे इंतजामों के जरिए हासिल करना चाहती है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हमारे देश की सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था यह जानती है कि इस देश के बच्चों को उनके घरों से निकाल कर स्कूल नामक जगह पर लाना है। मगर दिक्कत यह है कि इन बच्चों को ऐसी चीजें करने में समर्थ बनाने की कोशिश की जाती है जो उनके रोजमर्रा के जीवन से नहीं जुड़ी हैं। जैसे, किसी पाठ को पढ़ना, लिखना, गणना करना तथा और कई इसी तरह की चीजें। यह आरंभिक शिक्षा की अतिसरलीकृत समझ है। हालांकि शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए नीति के स्तर पर कई दिशा-निर्देश हैं और प्रयास हुए हैं, लेकिन इन नीतियों को जमीनी स्तर पर लागू करने में कुछ वैचारिक विसंगतियां हैं। मसलन शिक्षक और शिक्षक प्रशिक्षकों और उससे भी ज्यादा शैक्षिक संस्थानों के प्रशासकों, स्कूलों आदि की सोच में विसंगतियां। इस असंगत समझ को दूर करने के लिए कानूनी रूप से कुछ निश्चित न्यूनतम दिशा-निर्देश की जरूरत है। वापस इस सवाल पर लौटें कि "हम आरंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण क्यों चाहते हैं?" इसमें "हम" कौन हैं? अगर यह "हम" विभिन्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमियों वाले किन्हीं व्यक्तियों की बजाय पूरे समाज के लिए आता है तो जवाब इसमें छुपा है कि "हम" विचारयुक्त, आधुनिक और उदार शिक्षा का अर्थ कैसे लेते हैं। अगर यह मान लें कि शिक्षा समाज का भला करती है तो फिर शिक्षा बेहद जरूरी है। मुझे लगता है कि हम इतिहास के उन साक्ष्यों पर विश्वास कर सकते हैं कि शिक्षा ने दरअसल मनुष्यों का भला किया है, किन्तु कुछ असहमतियां और भूलें व चूकें भी हैं, जिन्हें शिक्षा के अर्थ को ग्रहण करते वक्त तथा सबके लिए लागू किए जाते वक्त ठीक किए जाने की जरूरत है। एक जैसे तरीके से नहीं बल्कि अलग-अलग व्यक्तियों के लिए सबसे उपयुक्त रूप से यह करना होगा, हालांकि यह आसान नहीं है। जैसा कि बिन्दु ने इशारा किया है कि हम शिक्षा के मान्य उद्देश्यों पर फिर से विचार कर सकते हैं और इस पर सोच सकते हैं कि हम इन उद्देश्यों को पूरा कैसे कर सकते हैं। इसके अलावा कम से कम हमारे जैसे विविधता भरे समाज में शिक्षा प्रदान करने का काम हाथ में लेने के अलावा औपचारिक व आधुनिक संस्थानों के पास कोई और विकल्प नहीं है। इसीलिए आरंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण जैसी राजनीतिक पहल की जरूरत है। मुझे नहीं लगता कि व्यक्ति या समुदाय अकेले-अकेले इस काम को अंजाम दे सकते हैं। निःसंदेह आरंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण जरूरी है किन्तु ज्यादा गहरी सोच के साथ और गुणवत्ता, समता व शिक्षा के सामाजिक उद्देश्यों पर बेहतर समझ के साथ।

## जवाब 3 : समीर समनानी

1. एक वैश्विक नागरिक के तौर पर मैं सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों (मिलेनियम डवलपमेंट गोल्स) 2 व 3 के स्पष्ट रुख से सहमत हूँ। इसलिए मैं आरंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण चाहता हूँ। 2. हमारे संविधान ने आरटीई के अंतर्गत यह प्रावधान किया है कि हर बच्चे को निःशुल्क व अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा मिलनी चाहिए, इसलिए एक भारतीय नागरिक के रूप में मैं इसे चाहता हूँ। 3. एक समाज का सदस्य होने के नाते मैं चाहता हूँ कि समाज/समुदाय के हर व्यक्ति को संवैधानिक मूल्यों को समझना चाहिए और उनके अनुरूप व्यवहार करना चाहिए। बेशक स्कूल संविधान में उल्लिखित इन मूल्यों का अभ्यास करने की जगह है। 4. एक परिवार के सदस्य के तौर पर मैं चाहता हूँ कि उसका हर सदस्य संविधान को समझे तथा उसके अनुरूप व्यवहार करे। एक मनुष्य के तौर पर मेरा उद्देश्य सिर्फ

वही है कि ऐसे उत्पाद व प्रक्रियाएं विकसित की जाएं, जो हमें इस दुनिया में बनाए रखने और विकसित करने में मददगार हों। इसलिए मैं आरंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण चाहता हूँ।

#### जवाब 4 : अंशुमाला

मुझे ऐसा लग रहा है कि पिछली पोस्ट में साथी यह मान रहे हैं कि बिन्दु द्वारा विस्तारपूर्वक उल्लिखित उद्देश्यों को व्यापक पैमाने पर औपचारिक शिक्षा के बिना हासिल नहीं किया जा सकता। ये उद्देश्य संक्षेप में इस तरह हैं : लोकतांत्रिक पहचान का विकास, लोकतांत्रिक मूल्य, लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में भागीदारी, स्वतंत्र रूप से आत्मनिर्भर होकर विचार कर पाना, अपने परिवेश के प्रति संवेदनशीलता, भिन्न संस्कृतियों के प्रति संवेदनशीलता, तथा उत्पादन प्रक्रिया में जुड़ाव आदि (संक्षेपण के लिए माफी, इसे केवल आसानी के लिए किया गया है।)

अपने परिवेश के साथ अपने-आपमें शांति व सद्भाव से रहने वाले एक आदिवासी समुदाय को बिना किसी आधुनिक किस्म की सार्वजनिक शिक्षा के यह सब अपनी नई पीढ़ी में विकसित कर पाने में सक्षम होना चाहिए, अगर वह उन मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध है। इस बात को दर्शाने के लिए पर्याप्त नृत्यशास्त्रीय प्रमाण मौजूद हैं कि इस तरह के मूल्य बहुत से समुदायों में एक भिन्न स्तर पर विद्यमान रहे हैं। मुझे लगता है कि सैद्धांतिक तौर पर इन सबका विकास किसी संस्कृति के जरिए संभव है। सैद्धांतिक तौर पर पठन, लेखन व गणन कौशलों के लिए भी सार्वजनीन शिक्षा की जरूरत नहीं पड़ती।

आरंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण का तर्क किसी और बात में छुपा है। इस तर्क को समता और न्याय में देखा जा सकता है, जो आज के आधुनिक विश्व में जरूरी हैं। इस बात का इशारा पिछली पोस्ट में भी किया गया है। मुझे लगता है कि नई पीढ़ी की तैयारी अनिवार्य शिक्षा के बिना अलग-थलग रह रहे, आत्म-निर्भर व आंतरिक रूप से लोकतांत्रिक समुदायों में भी संभव है। लेकिन विश्व के बढ़ते पारस्परिक जुड़ाव, परस्पर निर्भरता व जटिलता के कारण इस तरह की संभावनाएं या तो गौण होती जा रही हैं अथवा सदा के लिए मिट गई हैं। कोई भी व्यक्ति या समुदाय आज, इन आधुनिक देश-राज्यों में अलगाव के साथ जीवित रहने में समर्थ नहीं है। आज की जटिल दुनिया में सीमित पारंपरिक ज्ञान के साथ गरिमामय जीवनयापन लगभग असंभव होता जा रहा है। यह राजनीतिक अधिकारों के प्रति चेतना को आधुनिक राजनैतिक व्यवस्था के तहत उत्तरजीविता की एक महत्वपूर्ण शर्त बना देता है। ऐसी परिस्थिति में कोई लोकतांत्रिक समाज अगर अपने सभी नागरिकों की न्यूनतम गरिमा के लिए प्रतिबद्ध है तो उसे आधुनिक देश-राज्य में जीवनयापन कर पाने के लिए जरूरी न्यूनतम विचार/ज्ञान को उपलब्ध करवाने की जिम्मेदारी उठानी होगी। यहीं मुझे आरंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण किए जाने की जरूरत लगती है।

#### जवाब 5 : बिन्दु थिरुमलाई

मैं अंशुमाला की ज्यादातर टिप्पणियों से सहमत हूँ किन्तु मुझे इस वाक्य “उसे आधुनिक देश-राज्य में जीवनयापन कर पाने के लिए जरूरी न्यूनतम विचार/ज्ञान को उपलब्ध करवाने की जिम्मेदारी उठानी होगी।” ने डरा दिया। कुछ सालों पहले मैं उड़ीसा में थी और मुझे ‘पट चित्र’ बनाने वाले एक पारंपरिक कलाकार (जिन्हें कई पुरस्कार मिल चुके हैं) व उसके परिवार से उनके घर पर मिलने का अवसर मिला। उसके दो जवान बेटे थे और वे उसके काम में मदद कर रहे थे। यह इतवार का दिन था। इस कलाकार ने अपने पिता के साथ यह काम सीखने की शुरुआत करने की कहानी बयां की और बताया कि कैसे छोटी-सी उम्र में इस कला को सीखने के लिए उसने हर दिन घंटों का समय लगाया। मैंने जब उसके बेटों के बारे में पूछा तो उसने बताया कि मैं उन्हें स्कूल भेजता हूँ। वे इस कला को जानते हैं लेकिन बहुत ज्यादा नहीं क्योंकि स्कूल जाने के साथ इतना समय नहीं दे पाते। उसे उम्मीद थी कि स्कूली शिक्षा उसके बेटों को बेहतर रोजगार के अवसर उपलब्ध करवाएगी क्योंकि वे इस कला के साथ बहुत आगे तक जीवन चला पाने में समर्थ नहीं होंगे। पर तब क्या हो जब इन बच्चों को स्कूल में भी जीवनयापन कर पाने के लिए जरूरी कौशल/ज्ञान कम से कम मात्रा में मिलें? क्या तब वे ठीक से जीवनयापन कर पाएंगे? पूछे जाने वाला बड़ा सवाल यह है कि उन्हें न्यूनतम स्तर का कौशल व ज्ञान ही क्यों मिलना चाहिए?

## जवाब 6 : अंशुमाला

में दर्शन के अनिवार्य व पर्याप्त कारणों के बीच अंतर का सहारा लेना चाहूंगी। किसी भी व्यक्ति के जीवनयापन के लिए आज न्यूनतम विचार/ज्ञान अनिवार्य हैं और यह निश्चित रूप से पर्याप्त नहीं है। आरंभिक शिक्षा किसी क्षेत्र में आर्थिक उपार्जन के लिए पर्याप्त नहीं है। क्या बहुत उच्च गुणवत्ता होने के बावजूद यह पर्याप्त हो सकती है? मुझे ऐसा नहीं लगता।

## जवाब 7 : बिन्दु थिरुमलाई

मैं आपसे सहमत हूँ कि आरंभिक शिक्षा रोजगार के लिए पर्याप्त नहीं होती, किन्तु यह न्यूनतम अनिवार्यता क्या है? क्या यह 10वीं की बोर्ड परीक्षा पास कर लेने की योग्यता है या उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रवेश पा लेने की योग्यता है अथवा उच्च शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों में वास्तविक रूप से भागीदारी कर पाने की योग्यता है...? यही बात गुणवत्ता के बारे में है। उच्च गुणवत्तापूर्ण शिक्षा क्या है? 'न्यूनतम' व 'गुणवत्ता' के साथ मसला यही है। हम इसे परिभाषित कैसे करते हैं, मापते कैसे हैं। मेरे मुताबिक तो वे एक ही चीज को परिभाषित करने वाले शब्द मात्र हैं किन्तु 'न्यूनतम' शब्द 'गुणवत्ता' शब्द की बनिस्बत ज्यादा नकारात्मक ध्वनित होता है। न्यूनतम की बजाय गुणवत्ता के साथ ऊंची उम्मीदें पालना ज्यादा आसान नजर आता है।

## जवाब 8 : अंशुमाला

मुझे जवाब देने की जरूरत महसूस हो रही है। मैं 'उच्च शिक्षा में प्रवेश' को हर नागरिक के लिए जरूरी नहीं मानती। हो सकता है कि यह बेहद वांछनीय हो, हालांकि यह इस पर निर्भर करता है कि आरंभिक शिक्षा क्या देने में (अ)समर्थ है, यह किसी नागरिक की जरूरतों को कैसे पूरा करती (या नहीं करती) है और उच्च शिक्षा व्यक्तिगत जीवनों/व्यवसायों को क्या मुहैया करवाती है? आज की तारीख में उपलब्ध ज्यादातर उच्च शिक्षा बहुत से व्यवसायों के लिए लगभग व्यर्थ है, खासतौर पर मूलभूत उत्पादन (कृषि, पशुपालन, शिल्प, वानिकी, हस्तकौशल...) के लिए।

मुझे नहीं पता कि न्यूनतम को क्यों नकारात्मक ही ध्वनित होना चाहिए। हम 'न्यूनतम अनिवार्य चीजों' के बारे में बात कर सकते हैं, जो शुरुआती संभाव्य 'गुणवत्ता' के बारे में बात करने के लिए एक कसौटी, एक मानक, एक स्तर हो सकती हैं। इस न्यूनतम से ज्यादा चीजें फिर बहुत वांछनीय कहलाएंगी। मैं निश्चित ही आपसे सहमत हूँ कि इस न्यूनतम को परिभाषित करना कठिन होगा। लेकिन क्या यही वह चीज नहीं है जो पाठ्यचर्या निर्माता (आरंभिक शिक्षा के लिए) करते हैं?

## जवाब 9 : दीपिका

मैं एक अंतर रखकर बात शुरू करना चाहती हूँ और अपने जवाब को दो हिस्सों में विभाजित करती हूँ कि क्या हमें आरंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की जरूरत है- और क्या हमें सभी के लिए 'इसी तरह की' आरंभिक शिक्षा की जरूरत है?

अगर हम यह मानते हैं कि सभी मनुष्य स्वतंत्र व समान पैदा होते हैं और उन्हें विकास के समान अवसर उपलब्ध करवाए जाने चाहिए तो आरंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की जरूरत है। किन्तु जिस तरह एक ही लाठी से सबको हांकने वाली प्रवृत्ति हमारी शिक्षा व्यवस्था में मौजूद है, वह शिक्षा के उद्देश्य (जैसा कि एनसीएफ 2005 में परिभाषित हैं) को बेमानी बना देती है। कुछ लोग और आगे बढ़कर अतिवादी रवैया अपना सकते हैं और इसे उन बच्चों पर हिंसा करार दे सकते हैं जिन्हें इस सबसे गुजरना होता है, और जो न्यूनतम पठन, लेखन व समझ के कौशल भी अर्जित करने में समर्थ नहीं हो पाते।

दूसरा सवाल जो पैदा होगा वह यह कि 'जो' सार्वजनीन है वह क्या अलग-अलग समूहों/समुदायों के लिए भी सार्वजनीन है या फिर क्या आदिवासियों, समृद्ध शहरियों, गरीब शहरियों के लिए अलग-अलग तरह की 'शिक्षा' हो

सकती है? यह तर्क दिया जा सकता है कि अगर सबको 'एक तरह' की शिक्षा उपलब्ध नहीं करवाई जाती है तो कारीगर हमेशा कारीगर ही रह जाएंगे और उन धनवानों की सेवा करते रहेंगे जिन्हें 'गुणवत्तापूर्ण' शिक्षा उपलब्ध है। क्या सार्वजनीन शिक्षा की एक ऐसी रूपरेखा हो सकती है, जिसमें विविधता के साथ ही किन्हीं साझा उद्देश्यों को पाया जा सके, तब दरअसल आरंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण विभिन्न समुदायों के जीवन में अर्थ भर सकता है, अन्यथा यह कागजों पर एक दस्तावेज मात्र है, जिसे राज्य नामांकन के आंकड़े दर्शाकर, आरंभिक शिक्षा को पूरी करके व गुणवत्ता का सवाल कभी न उठाकर या 'गुणवत्ता किसका काम है' इसे कभी न परिभाषित करके हासिल करना चाहता है। जब तक आरंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के संदर्भ में ये सवाल नहीं सुलझा लिए जाते, तब तक यह केवल अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर रिपोर्ट प्रस्तुत करने के काम का है और वह भी इसलिए कि भारत ने कुछ संधियों व समझौतों पर हस्ताक्षर कर रखे हैं।

### जवाब 10 : कुलदीप

मैं सवाल का पूरा जवाब न देकर, बस कुछ जोड़ रहा हूँ। एक राष्ट्र-राज्य के तौर पर भारत और एक समाज के तौर पर भारत यथार्थ के नजरिए से दो भिन्न चीजें हैं। एक राष्ट्र-राज्य के तौर पर यह लोकतंत्र को समर्पित है, जबकि एक समाज के तौर पर जाति, धर्म आदि संस्थाओं व इनसे बनने वाली शोषणकारी व विषम समाज व्यवस्था के कारण ज्यादातर समय यह अन्यायपूर्ण और अलोकतांत्रिक होने के लिए अभिशप्त है। कोई भी सामाजिक संस्था उदाहरण के लिए, लोकतंत्र व जाति एक मायने में सोचने, कर्म करने व महसूस करने का तरीका है। एक सामाजिक संस्था के तौर पर लोकतंत्र में जो मूल्य शामिल हैं, वे जाति व्यवस्था में पले-बढ़े किसी व्यक्ति को नागवार लग सकते हैं। इसी प्रकार सामाजिक संस्था के तौर पर जाति में निहित मूल्य लोकतंत्र के खिलाफ जाते हैं। इसलिए एक राष्ट्र-राज्य के तौर पर भारत और एक समाज के तौर पर भारत के बीच एक किस्म की असंगति पैदा होती हुई दिखती है। यही असंगति स्कूली शिक्षा पर तीखे हमले व स्कूलों से माता-पिता द्वारा अपने बच्चों को निकाल लेने के मूल कारणों में से एक है। अगर हम सचमुच लोकतंत्र को एक जीवन दर्शन (कर्म करने, सोचने व महसूस करने के तरीके) के तौर पर अपनाना चाहते हैं तो फिर इस विसंगति को उखाड़ फेंकना होगा। ऐसा करने के लिए शिक्षा का सार्वजनीकरण सबसे असरदार तरीका लगता है क्योंकि यह हमारी नई पीढ़ियों का लोकतंत्र में समाजीकरण किसी मतारोपण के जरिए नहीं बल्कि आलोचनात्मक जांच जैसी श्रम साध्य प्रक्रिया के जरिए व आवश्यक ज्ञान, योग्यताओं व प्रवृत्तियों के मूल को विकसित करने में व्यवस्थित मदद उपलब्ध करवाकर करता है। इस प्रकार हमारी नई पीढ़ी को इस तरह की असंगतियों को समझने तथा खुद को इन सबसे मुक्त करने के लिए पर्याप्त साहस व सामर्थ्य विकसित करने के मौके मिलते हैं।

### रोहित धनकर

मूल सवाल : “हम आरंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण क्यों चाहते हैं?”

सवाल पोस्ट करते वक्त यह मान्यता थी कि : 1. हम सब यह चाहते हैं कि आरंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण हो तो जरूरी नहीं कि हम इस पर सहमत हों कि यह क्यों महत्वपूर्ण है; तथा 2. इस 'क्यों' के हमारे जवाब इस बात पर बहुत गहरा असर डालते हैं कि हम किस तरह की शिक्षा का सार्वजनीकरण करने की कोशिश करते हैं।

चर्चा के अगले चरण के बारे में किसी भी सुझाव से पहले मैं जवाबों का सार-संक्षेप रखने की कोशिश करूंगा। मेरा सारांश गलत हो सकता है या पक्षपातपूर्ण लग सकता है या दोनों हो सकते हैं; लेकिन मैंने इन जवाबों को इसी रूप में ग्रहण किया है।

(अ) ज्यादातर जवाब शिक्षा के सार्वजनीकरण के औचित्य प्रतिपादन के लिए लोकतंत्र को एक पूर्वमान्यता के तौर पर पेश कर रहे हैं। हालांकि यह बात सीधे तौर पर नहीं कही गई है। वे सब “समाज के लिए अच्छा”, “असमानता के उन्मूलन के लिए जरूरी”, “समानता”, “न्याय” आदि का जिक्र करते हैं।

- (ब) एक जवाब यह सुझाता है कि हमें मूल सवाल का बेहतर जवाब देने के लिए पहले शिक्षा के अर्थ की तहकीकात कर लेनी चाहिए।
- (स) एक जवाब निम्नांकित तर्क देता हुआ लगता है- आरंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण को न्यायोचित ठहराने से पहले हमें शिक्षा के उद्देश्यों को समझने की जरूरत होगी व शिक्षा के उद्देश्यों को हासिल करने के लिए हमें आरंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की जरूरत होगी। लेकिन शिक्षा के इन चुने हुए उद्देश्यों को कौनसा आधार उचित ठहराता है?
- (द) कई जवाब शिक्षा की प्रकृति, शिक्षा की गुणवत्ता, न्यूनतम अनिवार्य का विचार व उसकी प्रत्येक बच्चे तक सही मायने में पहुंच जैसे सरोकारों को अभिव्यक्त करते हैं।
- (ई) इस तरह के सरोकार भी हैं कि अकेली शिक्षा शायद बहुत कम हासिल कर पाने में सक्षम होती है और हमें समाज के दूसरे कई घटकों/ताकतों को ध्यान में रखना होता है।

### तो फिर आगे किस तरह बढ़ें?

मेरा सुझाव है (और यह मेरा अपना विश्वास है जो गलत हो सकता है) कि ठीक तरह से सोचने के लिए हमें एक रणनीति बनानी होगी। जटिल मुद्दों पर विचार करना कई बार 'बुजुर्गियत की समस्या' के समान लगने लगता है, और यह युवाओं को बहुत सताता है! मैं यह बताना चाहता हूँ कि बुजुर्गियत की समस्या से मेरा मतलब क्या है। यह आम व स्वीकृत पदावली नहीं है, इसे एक उदाहरण से समझते हैं। कुछ महीनों पहले मुझे एक ईमेल मिला जिसमें एक बुजुर्ग अपने अनुभव बयां करते हैं : "मैं अपनी कुर्सी से पौधों में पानी देने के लिए उठा किन्तु मैंने देखा कि मेरी कार की चाबियां रसोई की टेबिल पर पड़ी हैं। मैंने चाबियों को उठाया और उस बोर्ड की तरफ गया जिस पर सभी चाबियां टांगी जाती हैं, जब मैं चाबियों को उनकी उचित जगह पर रख रहा था तब मैंने देखा कि खिड़की खुली है और मच्छर घर में चले आ रहे हैं। जब मैं खिड़की को बंद करने उसकी तरफ बढ़ रहा था तो देखा कि फर्श पर कल का अखबार पड़ा था, मैंने इसे उठाया और सीढ़ियों के नीचे अखबार रखने के लिए बनी जगह पर रखने के लिए गया..." उस बुजुर्ग द्वारा बताए गए किस्से व अवधारणात्मक समस्याओं पर हमारे सोचने के तरीके में कुछ समानता है। हम यह समझना चाहते हैं कि हम आरंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण क्यों करना चाहते हैं, और तभी हमें यह लगने लगता है कि हम हर बच्चे तक शिक्षा पहुंचा पाने में समर्थ नहीं हो पा रहे हैं, और हम यह सोचना शुरू कर देते हैं कि ऐसा क्यों हो रहा है और इसके बारे में हम क्या कर सकते हैं? लेकिन जैसे ही हम उस ओर कुछ कदम बढ़ाते हैं कि पाते हैं आरंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण से वास्तव में समाज नहीं बदलता, इसलिए और बहुत-सी चीजों की जरूरत है, और वे क्या हैं? जब हम उन घटकों पर विचार कर रहे होते हैं तो पाते हैं कि मिड डे मील अपना वह उद्देश्य पूरा नहीं कर पा रहा है जो इसे करना चाहिए था, इत्यादि, इत्यादि...

इसी को मैंने ढीले-ढाले रूप से बुजुर्गियत की समस्या कहा है। निश्चित ही सोचने के इस तरीके को भी कुछ लोग उचित ठहरा सकते हैं। किन्तु वे सभी चीजें जो शिक्षा में मायने रखती हैं, इन्हीं आधे-अधूरे विचारों के आधार पर निकाली जाएं तो सिर से गलत व भ्रामक हो सकती हैं। इसलिए इससे पहले कि हम इस आरंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण संबंधी सवाल का जवाब दे पाएं, हमें शिक्षा व समाज संबंधी दूसरी सभी समस्याओं पर विचार करना चाहिए। व्यक्तिगत तौर पर मुझे लगता है कि जब तक हम स्पष्टता के साथ विचार करने की कोई रणनीति न बना लें तब तक हम कहीं नहीं पहुंचेंगे। मैं जो रणनीति सुझा रहा हूँ वह इस प्रकार है:

1. हम जरूरत के अनुसार विश्लेषण व संश्लेषण के बीच आवाजाही करने का फैसला कर लें। विश्लेषण का यहां मेरे हिसाब से अर्थ यह है कि "छोटे-छोटे टुकड़ों में किसी सामग्री को तोड़कर उसका अध्ययन"। इसी तरह संश्लेषण का अर्थ है "विचारों का एक जटिल समग्र में समायोजन"। हम इसे जब और जितनी जरूरत हो उतना करें।
2. परंतु समेकन के चरण में पहुंचने के लिए विचार की एक दिशा पकड़कर रखें, ताकि हम अपनी मेहनत के

परिणामों से हाथ न धो बैठें, और जब पुनः वह दिशा लेना जरूरी हो जाए तो उसे प्राप्त कर सकें। इसका अर्थ है, हम अपने परिणामों के 'समूह/वर्ग' बना-बनाकर रख लें और फिर अगले चरण, मुद्दे या विषय पर जाएं।

3. इस मामले में जब भी जरूरत हो 'क्या होना चाहिए' और 'क्या है' के बीच अन्वेषण करते हुए आवाजाही करते रहें; लेकिन दोनों को मिलाएं नहीं, और स्पष्ट रहें कि किसके बारे में बात कर रहे हैं।
4. इसी तरह हम अवधारणात्मक विश्लेषण व व्यावहारिक मुद्दों के बीच भी आवाजाही करते रहें, किन्तु अपने परिणामों को पुनः प्राप्त कर पाने की स्थिति में बनाए रखते हुए।
5. हम अपने चिंतन के सभी परिणामों को अस्थाई रखें, जब नए घटकों व नए नजरियों को शामिल कर रहे हों तो संशोधन जरूरी लग सकता है और जब जरूरत आन पड़े तब हम समीक्षा और संशोधन करने में संकोच न करें।
6. और यह सब हम तर्कसंगत आधारों की रोशनी में करें तथा बौद्धिक फैशन व राजनीतिक रूप से सही रुख से बचें, अगर उनकी तर्क के साथ टकराहट होने लगे तो।

निश्चित ही कोई भी दर्जनों और रणनीतियां बना सकता है, जो समान रूप से उपयोगी हो सकती हैं, यह उनमें से एक है। रणनीति बना लेना हमें काम करने का कोई अनोखा तरीका नहीं दे देता। अतः हम एक से अधिक तरीकों से काम लेने का निर्णय ले सकते हैं। हमारी अभी की चर्चा में मैं यह सुझाता हूँ कि हम अभी उन मुद्दों को अलग समूह बनाकर रख लें, जो अभी सीधे तौर पर 'आरंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण क्यों'- इस बात की पड़ताल करने के लिए जरूरी नहीं हैं। हम पहले इसकी कुछ समझ बनाने पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। कुछ सवाल जो कि अस्थाई (जब तक कि हम उनमें समीक्षा/संशोधन की जरूरत महसूस करें) हैं, नीचे सुझाए गए हैं। मेरे हिसाब से वे अगले चरण पर जाने के लिए जरूरी हैं। मेरा सुझाव है कि हम 'शिक्षा के सामाजिक उद्देश्यों' व 'शिक्षा के उद्देश्यों' के बीच फर्क कर लें। इसे अस्थाई तौर पर निम्न प्रकार देखते हैं :

**शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य :** 'किसी समाज को शिक्षा की जरूरत क्यों है' संबंधी सवालों का जवाब देते हैं। उदाहरण के लिए, 'एक न्यायपूर्ण समाज बनाने के लिए', 'विकसित अर्थव्यवस्था बनाने के लिए', 'ज्यादा समृद्धि के लिए', 'सामाजिक एकता के लिए', 'अपनी सांस्कृतिक विरासत को बचाने के लिए', आदि, आदि। ध्यान दें कि ये सभी उद्देश्य इस बारे में हैं कि हम किस तरह का सामाजिक जीवन चाहते हैं तथा ये शिक्षा की समग्र व्यवस्था से संबंधित हैं। ये शिक्षा व्यवस्था के उद्देश्य हैं। वे सीधे तौर पर किसी शिक्षा व्यवस्था को न्यायोचित ठहराने व उसकी विशेषता बताने संबंधी हैं। शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य वांछनीय समाज विकसित करने/रचने/बनाए रखने के बारे में बात करते हैं।

**शिक्षा के उद्देश्य :** शिक्षा के उद्देश्य उन क्षमताओं, समझ, मूल्यों, चरित्र की विशेषताओं व कौशलों को स्पष्टतः परिभाषित करते हैं जिन्हें हम शिक्षा ग्रहण करने वाले किसी व्यक्ति में विकसित करना चाहते हैं। इसके उदाहरण हैं: "लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति तर्कसंगत प्रतिबद्धता", "सामाजिक दुनिया के बारे में ज्ञान", "अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने की क्षमता", "दूसरे मनुष्यों के प्रति संवेदनशीलता" आदि। शिक्षा के उद्देश्य वांछनीय व्यक्ति विकसित करने के बारे में बात करते हैं।

**शिक्षा व्यवस्था :** शिक्षा व्यवस्था को हम उन ढांचों व प्रक्रियाओं के समग्र के तौर पर परिभाषित करते हैं जिन्हें शिक्षा को लागू करने या व्यवहार में उतारने के लिए व शिक्षा के लिए नीतियां बनाने के लिए बनाया गया है। इस तरह शिक्षा व्यवस्था, स्कूल से कैब (CABE) तक व जब शिक्षा पर बहस हो रही हो तो संसद तक सभी ढांचों का समग्र रूप होगी।

**शिक्षा :** हम शिक्षा की सरल परिभाषा से शुरू करते हैं- "अपनी प्रक्रियाओं व परिणामों के बारे में सोच-समझ कर सीखना-सिखाना (शिक्षण-अधिगम)"। यह परिभाषा सरल है और विवादास्पद हो सकती है। किन्तु हम जैसे-जैसे आगे बढ़ेंगे वैसे-वैसे इसे और संशोधित व परिष्कृत कर लेंगे।



हम अपना अन्वेषण शुरू करने के लिए इन सभी परिभाषाओं को 'अनुबंधित' मान लें, अब अगर इन परिभाषाओं की रोशनी में हम इस चर्चा को समझें तो यह कुछ इस तरह नजर आती है :

1. मूल सवाल "आरंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण क्यों" दरअसल शिक्षा के सामाजिक उद्देश्यों को बताना और उन्हें उचित मानने के कारण बताने के लिए कहता है। अर्थात् यह आपसे व्याख्या चाहता है कि कोई समाज आरंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण क्यों चाहता है तथा इससे किन उद्देश्यों को हासिल करना चाहता है?
2. अगर हम कहते हैं कि हमारा उद्देश्य है सभी बच्चों के लिए शिक्षा तो पहले हमें शिक्षा के उद्देश्यों को परिभाषित करने व न्यायोचित ठहराने की जरूरत होगी तथा साथ ही इस बात को भी न्यायोचित ठहराना होगा कि 'सभी बच्चे' क्यों? अतः सवाल खत्म नहीं होता बल्कि यह बदले रूप में बना रहता है।
3. एक नया सवाल भी उठने लगता है : उद्देश्यों का कौनसा समूह अपेक्षाकृत प्राथमिक है? शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य अथवा शिक्षा के उद्देश्य? दूसरे शब्दों में, क्या हम पहले शिक्षा के सामाजिक उद्देश्यों को सुनिश्चित करना चाहते हैं और फिर उनसे शिक्षा के उद्देश्य निकालना (कम से कम आंशिक रूप से) चाहते हैं? या वैकल्पिक तौर पर दूसरा रास्ता अपनाना चाहते हैं- पहले शिक्षा के उद्देश्य सुनिश्चित करना और फिर उनसे शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य निकालना? यह सवाल भी पूछा जा सकता है, प्राथमिक क्या है- समाज के बारे में नजरिया या व्यक्ति के बारे में नजरिया? अथवा दोनों ही नहीं?
4. हम कह सकते हैं कि हम एक लोकतांत्रिक समाज की कल्पना करते हैं और फिर उस सामाजिक नजरिए को हासिल करने के लिए शिक्षा के सामाजिक उद्देश्यों को परिभाषित करने की कोशिश करते हैं। शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य परिभाषित कर लेने के बाद उनसे संगति रखने वाले शिक्षा के उद्देश्य व वांछित समाज का नजरिया परिभाषित कर लेते हैं। अतः शिक्षा के सामाजिक उद्देश्यों को सामाजिक नजरिए से पुष्टि प्राप्त करनी होती है तथा शिक्षा के उद्देश्यों को सामाजिक नजरिए व साथ ही शिक्षा के सामाजिक उद्देश्यों से पुष्टि प्राप्त करनी होती है।
5. निश्चित ही हम सिर्फ सतह खुरच रहे हैं। क्योंकि शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य व शिक्षा के उद्देश्य समाज की वर्तमान दशा से बहुत ज्यादा प्रभावित होंगे- देखना होगा कि यह अभी लोकतंत्र से कितनी दूर है? अलग-अलग लोग लोकतंत्र को कैसे देखते हैं? हम वर्तमान दशा से वास्तविक लोकतंत्र तक का रास्ता कैसे तय करेंगे? आदि। किन्तु हम अभी इन सभी मुद्दों को एक समूह बनाकर अलग रख रहे हैं। और इन पर थोड़ी देर बाद फिर से लौटकर आएंगे।

### अगले सवाल :

मान लेते हैं कि हम लोकतांत्रिक समाज चुनते हैं, तो तुरंत ही जिन सवालों का हम सामना करते हैं वे हैं :

1. हम लोकतंत्र को परिभाषित कैसे करते हैं?
2. हम लोकतांत्रिक समाज के अपने चुनाव को न्यायोचित कैसे ठहराते हैं?
3. किसी लोकतांत्रिक समाज के लिए किस तरह के शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य जरूरी (सबसे उपयुक्त) होंगे?
4. किसी लोकतांत्रिक समाज के लिए किस तरह के शिक्षा के उद्देश्य जरूरी (सबसे उपयुक्त) होंगे व किस तरह के शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य स्वीकृत/मान्य होंगे?

मेरा सुझाव है कि हम इन आखिरी चार सवालों को लेते हैं। क्योंकि अगर अन्वेषण का जो तरीका मैंने सुझाया है वह स्वीकार्य है तो हम इनसे निपटे बिना वास्तविक प्रगति नहीं कर सकते। ♦

भाषान्तर : प्रमोद पाठक